Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2025 GISRRJ | Volume 8 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095
doi :https://doi.org/10.32628/GISRRJ

परमतत्त्व की दार्शनिक मीमांसा

डॉ0 ऋचा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–संस्कृत, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर, भदोही।

Article Info
Volume 8, Issue 3
Page Number : 447-452

Publication Issue :
May-June-2025

Article History
Accepted : 20 May 2025
Published : 30 May 2025

शोध सारांश – दर्शन अन्तिम सत्य के उद्घाटन का प्रयास करता है पर इस अन्तिम सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध में सभी दार्शनिक एक मत नहीं है। किसी दार्शनिक ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की है, किसी ने द्वैतवाद और किसी ने अनेकवाद की। द्वैतवाद गुण के आधार पर प्रकृति और पुरुष, जड़ और चेतन दो सत्तायें स्वीकार करता है। स्वरूप की दृष्टि से परमात्मा एक और जीवात्मा अनेक है। अनेकवाद सत्, चित् और आनन्द तीन सत्ताओं का प्रतिपादन करता है। सत् प्रकृति है जिसमें सत्, रज और तम की साम्यावस्था है। इस साम्यावस्था में वैषम्य अथवा विकृति परमात्मा के कारण उत्पन्न होती है, चित्–जीव है जो अनेक है, सच्चिदानन्द परमतत्त्व है। मत वैभिन्न होते हुए भी समस्त दार्शनिकों की प्रकृति एक ऐसी वास्तविकता की ओर गई जो आध्यात्मिक है जो किस भी अस्तित्व की ओर संकेत कर सकता है क्योंकि वह समस्त अस्तित्वों का मूलाधार है।

मुख्य शब्द– परमतत्त्व, दार्शनिक, मीमांसा, प्रकृति, अद्वैतवाद, द्वैतवाद।

हमारे वैदिक मनीषियों ने चेतना की गति को सभी सत्ताओं का आधार स्तम्भ माना है। अतः भारतीय मनीषा ने हमेशा अतिरिक्त की उपासना की है, शब्दों से परे, अर्थ से पार, भाव से ऊपर, मन से अतीत, कल्पना से उच्चतर और बोध से बृहत्तर जो भी सत्ता है, वही सबसे व्यापक और सभी के अन्तःस्थल में विद्यमान है। जो पार्थिव यथार्थ या मानवीय चिन्तन से हमेशा एक बित्ता ऊपर प्रतिष्ठित रहा है, वही परमसत्ता है और वही प्रणम्य भी। दृष्टि सामान्य दर्शन अतिरिक्त है। जो दृष्टि के पार है वह भी दर्शन की परिधि में अपनी छाया छोड़ जाता है। **''बृहन्तो हि अस्मिन् गुणा इति ब्रह्म''** अर्थात् ब्रह्म शब्द से तात्पर्य उस परमसत्ता से है जिसकी सत्ता एवं अनन्त शक्ति पर विश्व के सभी पदार्थों का अस्तित्व एवं संचालन निर्भर है। **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** इस वैदिक सूक्त के द्वारा वैदिक मनीषी सत्ता के जिस शीर्ष शिखर पर पहुँचे थे। उसके अनुसार परमसत्ता एक मात्र यथार्थ सत्ता है जो नानाविध रूपों एवं सत्ताओं में अपने को व्यक्त करती है। यह उच्चतम विचार उपनिषदों में ब्रह्म या आत्मा की एकता के विधान के रूप में प्रतिष्ठित है। तत्त्व ज्ञानियों ने प्रकृति के जिस रूप का रहस्योद्घाटन कर प्राकृत नियमों का दर्शन किया उससे समस्त विश्व आच्छादित है। यह प्रकृति निरन्तर चलायमान है, जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं रहेगा। अभिनवता प्रतिपल उसकी

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

जीवन संगिनी बनी हुई है, इसके बावजूद भी जो सूर्य कल था वही, आज फिर उदित हो रहा है जो पूर्णचन्द्र विगत् पूर्णिमा को उदय हुआ था, वहीं तीस दिन पश्चात् आने वाली पूर्णिमा को पुनः दिखाई देता है। अभिनवता में यह प्राचीनता कैसी? सहस्रों परिवर्तनों के पश्चात् यह स्थिरता कैसी? प्रकृति प्रपंच का यह चाक्षुष प्रत्यक्ष मानव को चिन्तन की ओर प्रवृत्त वैज्ञानिक की भाँति प्राकृतिक दृश्यों एवं घटनाओं का उद्घाटन नहीं करता है अपितु इसका संश्लेषण–विश्लेषण करता हुआ, प्रकृति के आवरण को चीरकर उस परमसत्ता का साक्षात्कार कर लेना चाहता है जो प्रकृति की पल–पल की नवीन रूपता एवं स्थिरता के मूल में विद्यमान है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के द्रष्टा ने इसकी घोषणा की थी कि ''तब अर्थात् सृष्टि के पूर्व न जीवन था, न मृत्यु थी, न दिन था, न रात थी, न धरती थी, न आकाश था और न सत्य था, न माया थी। सर्वत्र ऐसा कुछ गहन–गम्भीर गुप्त प्रकट था जिसे पता नहीं सृष्टि का रचनाकार भी जानता था या नहीं।'' अतः जिस समय पाश्चात्य तीसरी संभावना के प्रश्न में उलझा था। उसके हजारों वर्ष पहले भारतीय मनीषा ने चतुर्थ आयाम का उत्तर प्रस्तुत कर दिया था और प्रकृति के तीनों गुणों से परे जाकर उस परमसत्य की साक्षात् अनुभूति का प्रस्ताव रख दिया था।

परमात्मा परम आकाश के समान व्यापक और वैदिक ऋचाओं के समान अविनाशी है। उसमें समस्त देवगण स्थित हैं जो उसे नहीं जानता वह वेद की ऋचाओं का क्या करेगा? जो उस परमतत्त्व को जानते हैं, वे ही उस परम लोक में अधिष्ठित हो सकते हैं–

''ऋचा अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्नवैकिमुचा करिष्यति य तत् तद् विदुस्त इम समासते।।

सभी सत्य से आवृत्त एक सत्य है, जहाँ सूर्य या दिव्य ज्योति की मात्रा को उन्मुक्त कर देते हैं। दिव्य ऐश्वर्य, समृद्धि, ज्ञान, बल एवं आनन्द आदि की सहस्त्रों धाराएं एकत्र हो जाती हैं। ऐसे दिव्य सूर्य के रूप में वह कल्याणतम् रूप देव एक है–

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं व सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्याश्वान्।
दशा शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्चयम्।।

वैदिक साहित्य कवि चेतना की वाङ्मय मूर्ति है। वहाँ आध्यात्म चेतना आधिदैवत में उत्तीर्ण है और उसे अधिभूत की भाषा में रूप दिया गया है। जो कुछ स्थावर–जंगम है, यह सूर्य ही उसका आत्मा है– ''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थषश्च''।। ब्रह्म सूयसमं ज्योतिः।।

कठोपनिषद् में आचार्य यम द्वारा नचिकेता को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया गया है कि न इस आत्मा का कभी जन्म होता है और न इसकी कभी मृत्यु होता है। यह अजन्मा नित्य और शाश्वत है शरीर के मर जाने पर आत्मा नहीं मर जाती। परमतत्त्व के विषय में आचार्य यम का कथन है कि सारे वेद जिस पद का प्रतिपादन करते हैं जिसे लक्ष्य में रखकर सब प्रकार के तप किये जाते है, जिसका ज्ञान प्राप्त करने को इच्छा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता है उस पद को तुम्हें संक्षेप में बताता है वह पद ओऽम् ही है। वही परमसत्ता के नाम से अभिहित है।

प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद द्वारा ब्रह्म तत्त्व का निचोड़ प्रस्तुत किया गया है जो कि प्राण, पंच महाभूत, मन, इन्द्रिय, अन्न, वीर्य, तप, कर्म, मन्त्र, लोक और नाम– ये सब परमसत्ता से उत्पन्न होकर अन्त में पुनः उसी में लीन हो जाते हैं जैसे कि नदियाँ समुद्र में लीन हो जाती हैं। समुद्र में लीन होकर नदियों का न नाम रहता है और न रूप। उसी में एकाकार हो जाती है। इसी प्रकार मन, इन्द्रिय आदि परमतत्त्व में लीन होकर अपने नाम रूप या व्यक्तित्व का परित्याग कर उसी में एकाकार हो जाती है।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन के विकास में उपनिषदों का आधारभूत स्थान है। दार्शनिक विचारधारा के सभी सम्प्रदायों का मूल जिसमें नास्तिक दर्शन भी सम्मिलित है, उपनिषदों में प्राप्त होता है। वेदों में परम ब्रह्म के जिस दार्शनिक स्वरूप की झलक दिखाई देती है उसका विकसित रूप उपनिषदों में प्राप्त होता है। इनमें विश्व सत्ता के विषय में नवीन चिन्तन का आगाज होता है। उपनिषद् का तात्पर्य शिष्य का गुरु के समीप परमतत्त्व का उपदेश सुनने के लिए निष्ठापूर्वक बैठना, जिससे उसकी अविद्या का नाश हो तथा परमब्रह्म की प्राप्ति हो। यहीं वैदिक दर्शन का सारतत्त्व है। उपनिषदों की नींव पर ही सभी भारतीय दर्शनों एवं धर्मों के प्रासाद निर्मित हुए हैं। प्रायः उपनिषदों में बिखरे हुए बीजरूप विचारों से सभी दर्शनों को विकसित होने की प्रेरणा मिली। जिस प्रकार पर्वत अपने विभिन्न भागों से विभिन्न दिशाओं में बहने वाली नदियों को जन्म देता है, उसी प्रकार उपनिषद् साहित्य दर्शन का वह चरम शिखर है जो अपने विविध अंगों से अनेक विचारधाराओं को जन्म देता है। बिना किसी अपवाद के सभी आस्तिक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों का आदि स्रोत उपनिषदों में खोजते हुए अपने पक्ष की पुष्टि हेतु औपनिषदिक मन्त्रों को उद्धृत करते हैं इनमें मीमांसा एवं वेदान्त दर्शन पूर्णतया उपनिषदों पर आश्रित है। मीमांसा उपनिषदों की कर्ममूलक व्याख्या करती है तो वेदान्त ज्ञान–मूलक।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को सत्य, ज्ञान एवं अनन्त कहा गया है– "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**" जिससे निश्चय ही सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं और अन्ततः उसी में विलीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है– '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। ये जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति। तद्वि जिज्ञासस्वा। तद ब्रह्मोति।**" अन्न ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, विज्ञान ब्रह्म है और आनन्द ब्रह्म है। ब्रह्म विषयक ये पाँचों विचार ब्रह्म के पाँच कोशों का निर्माण करते हैं। ब्रह्म इन कोशों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उपनिषदों में ब्रह्म को 'नेति–नेति' कहा गया है अर्थात् ब्रह्म अलक्षण और अनिर्वाच्य है। बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म के पूर्ण निषेधात्मक वर्णन को नेति–नेति कहते हैं। उससे परे किसी अन्य वस्तु की सत्ता नहीं है क्योंकि परमतत्त्व ब्रह्म में सर्वस्व समाहित है।

उपनिषद् में ब्रह्म के सापेक्ष और निरपेक्ष भेद से दो रूप प्राप्त होते हैं। सापेक्ष ब्रह्म को सगुण, सविशेष, अपर ब्रह्म मूर्त या ईश्वर कहा गया है। वहीं निरपेक्ष ब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष, अमूर्त या परब्रह्म कहते हैं। शंकर के अनुसार ईश्वर ब्रह्म का वैयक्तिक पक्ष है और ब्रह्म ईश्वर का अवैयक्तिक। जड़ जीव और ईश्वर ब्रह्म की मात्र अभिव्यक्तियाँ हैं किन्तु रामानुज का कथन है कि ब्रह्म व्यक्तित्व युक्त एवं अन्तर्यामी ईश्वर है तथा जड़ एवं जीवात्माएँ उसके शरीर हैं। सापेक्ष ब्रह्म या ईश्वर की अवधारणा धार्मिक है किन्तु निरपेक्ष ब्रह्म की अवधारणा दार्शनिक। शंकर के अनुसार उपनिषदों में प्राप्त ब्रह्म विषयक दोनों दृष्टिकोण एक ही है और उनमें प्राप्त वैषम्य उन दृष्टिकोणों के कारण है जिनसे ब्रह्म का विचार किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्म सापेक्ष है और पारमार्थिक दृष्टि से निरपेक्ष। निरपेक्ष ब्रह्म की धारणा के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है और साधारण अनुभव की वस्तुएँ आभास मात्र हैं। यही ब्रह्म विवर्तवाद है। उपनिषद् का ब्रह्म ज्ञात है किन्तु विचार, मन और बुद्धि एवं तर्क द्वारा नहीं, अपितु अन्तर्दृष्टि द्वारा। मध्व सदृश कुछ भाष्यकार आत्मा को ब्रह्म से नितान्त भिन्न मानते हैं और रामानुज विशिष्ट प्रकार का अभेद स्वीकार करते है। तो वहीं शंकर आत्मा एवं ब्रह्म को नितान्त भिन्न मानते हैं। किन्तु तर्कबुद्धि ब्रह्म एवं आत्मा के विषय में अद्वैतवादी विचारों का समर्थन करती है। वैदिक ऋषियों का संभवतः यही मत रहा है। ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषद् के 'प्रज्ञानं ब्रह्म', सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् के 'तत्त्वमसि', अथर्ववेदीय, माण्डूक्योपनिषद् 'अयमात्मा ब्रह्म और यजुर्वेदीय वृहदारण्यकोपनिषद् के 'अहं ब्रह्ममास्मि'। ये चार महावाक्य इसकी पुष्टि भलीभाँति करते हैं। ब्रह्म और आत्मा की एकाकारता विश्व की अन्तिम सत्ता के वास्तविक

स्वरूप का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कराती है जिसके द्वारा इस सत्ता का स्वरूप अनन्त सत्ता के रूप में प्रकट होता है।

भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक वादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्र में लिखा है कि **''जन्माद्यस्य यतः''** अर्थात् जो विश्व के जन्म, स्थिति एवं संहार का कारण है वह ब्रह्म है। यह परिवर्तनशीलों में अपरिवर्तनीय, अनित्यों में नित्य, मर्त्यों में अमर्त्य और अन्तिम परम सत्य है। प्रकृति के रूप विभक्त हो सकते हैं परन्तु यह परमतत्त्व अविभाज्य एक रस शाश्वत सत्ता है। दर्शन अन्तिम सत्य के उद्घाटन का प्रयत्न करता है पर इस परम सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध में सभी एकमत नहीं हैं। किसी दार्शनिक ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की है, तो किसी ने द्वैतवाद की और किसी ने अनेकवाद की। विषयी और विषय, दृष्टा और दृश्य, प्रमाता और प्रमेय दोनों में एक ही तत्त्व प्रकाशित हो रहा है, जो दोनों में व्याप्त है और दोनों से परे भी। जीवात्मा में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है यही ब्रह्म रूप से इस समस्त विराट् जगत् में भी व्याप्त है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भी ब्रह्म और आत्मा की अनन्यता का सर्वप्रथम प्रतिपादन दर्शन जगत् के लिए उपनिषद् के ऋषियों की महान देन है। शुद्ध, अखण्ड चैतन्य परमतत्त्व ही जीव और जगत् के रूप में प्रतीत होता है। आत्मा और ब्रह्म दो न होकर अखण्ड चैतन्य रूप में एक ही तत्त्व है। परमतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर जड़ चेतनमय सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान हो जाता है क्योंकि विश्व के सभी चित् और अचित् पदार्थ नामरूप एवं विकार मात्र है, सत्य केवल परमतत्त्व है।

विश्व में एक क्रम है, व्यवस्था है जिसके मूल में एक महान मस्तिष्क है। इस चेतन सत्ता के सम्बन्ध में भी दार्शनिक विभिन्न विचार रखते हैं। किसी की सम्मति में यह एक अमरतत्त्व है और किसी की सम्मति में प्रकृति का प्रकाशन या चमत्कार मात्र। बौद्ध इसे ज्ञान धारा का नाम देते हैं परन्तु वे किसी ज्ञान की कल्पना नहीं करते हैं। यूनानी विद्वान् एनेक्सेगोरस ने समस्त व्यवस्थित सृष्टि के मूल में एक चेतन सत्ता को असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया है। वही हेगेल ने इस चेतन सत्ता को स्वीकार नहीं किया अपितु जड़ प्रकृति से ही चेतन की उत्पत्ति सिद्ध की है। प्रकृति नानारूपों में विकसित दिखाई देती है पर वह समस्त विद्यमान सत्ताओं का मूल और एकमात्र उपादान है। स्पेन्सर और हेगल का आदर्शवाद समस्त प्रपंच के मूल में चेतन तत्त्व को ग्रहण करता है। नैयायिकों ने आत्मा जीव और ईश्वर के भेद से दो प्रकार का माना है। अन्नंभट्ट ने तर्कसंग्रह में कहा है कि जीव अनेक है, ईश्वर एक है। जीव अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्य वाला है, ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्। न्याय–वैशेषिक जीव और ईश्वर को पृथक्–पृथक् मानते हैं संसार को धारण करने के लिए भी किसी परमसत्ता की आवश्यकता है। इसी परम चेतन सत्ता को ईश्वर कहा जाता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुसार ईश्वर दिखाई नहीं देता परन्तु ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो दिखाई नहीं देती फिर भी उनका अस्तित्व है। अनुमान न ईश्वर को सिद्ध करता है न असिद्ध। उपमान का कार्य किसी के अस्तित्व को सिद्ध करना नहीं, केवल सादृश्य को प्रकट करना है।

शब्द प्रमाण (वेद) ईश्वर को सिद्ध करता ही है अन्य प्रमाण स्वतः सिद्ध नहीं हैं। नैयायिकों का ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है उसमें अधर्म, मिथ्या ज्ञान और प्रमाद नहीं है पर धर्म ज्ञान और समाधि रूप सम्पत्ति अवश्य है। वैदिक विधान अपने आप नहीं बन गये उनको बनाने वाला चेतन तत्त्व ईश्वर है। वेद को किसी पुरुष ने नहीं बनाया। वे अपौरुषेय है। अतः वह सर्वज्ञ ईश्वर की कृति है। ज्ञान का जो तारतम्य यहाँ दृष्टिगोचर होता है। वह भी अपनी पूर्णता के लिए ईश्वर जैसी सर्वज्ञ सत्ता की ओर संकेत करता है। पुरुष और प्रकृति का संयोग और वियोग भी ईश्वर ही कराता है। वैशेषिक दर्शन वेद के ईश्वर का वचन मानकर ईश्वर को ज्ञान का स्रोत स्वीकार करता है। न्याय वैशेषिक ईश्वर के साथ जीव और प्रकृति को भी अनादि मानते हैं।

भारतीय दर्शनों में सांख्य, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शन निरीश्वरवादी कहलाते हैं, शेष सभी दर्शनों में ईश्वर का प्रतिपादन हुआ है। जैन दर्शन जीव के समुन्नत रूप को ईश्वर की संज्ञा देते हैं पर उसे सृष्टि का रचयिता और कर्मफल प्रदाता नहीं मानते। कपिल ने सांख्यदर्शन में वेदों को अपौरुषेय और स्वतः प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। परन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में उनका मत है कि वह प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता।

योग दर्शन का प्रमुख विषय चित्तवृत्तियों के निरोध का उपाय बताते हुए आत्मा का परमात्मा से योग कराना है। इसमें परमतत्त्व को क्लेश, कर्म–विपाक, अपरामृष्ट–पुरुष विशेष कहा गया है। परमात्मा जीवात्मा की तरह बद्ध और मुक्त नहीं होता। वह स्वतन्त्र और आनन्दस्वरूप है। गीता में भी ईश्वर को अन्य सभी पुरुषों से उत्तम परमात्मा कहा गया है।

वेदान्त दर्शन के तीन आधार उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार विश्व की वास्तविक सत्ता ब्रह्म है। वस्तुतः ब्रह्म ही सत्य है, अन्य कोई सत्ता सत्य नहीं है। प्रकृति या जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्म से पृथक उनकी भी कोई सत्ता नहीं है। परमतत्त्व ब्रह्म का स्वरूप निर्विशेष–चिन्मात्र है। ब्रह्म चेतनस्वरूप है, वह चित् शक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सांख्य दर्शन जिन्हें पुरुष व प्रकृति कहता है, उनका विकास इसी ब्रह्म से होता है। जब ब्रह्म संकल्प करता है, तो वह चाहता है कि वह बहुरूप हो जाय, तब वह अपनी शक्ति द्वारा सृष्टि का विकास करता है। प्रस्थानत्रयी के भाष्यकारों में शंकर–अद्वैतवाद, रामानुज विशिष्टाद्वैत, मध्व–द्वैतावाद, निम्बार्क–द्वैताद्वैतवाद और वल्लभाचार्य–शुद्धाद्वैतवाद आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें शंकर ने प्रस्थानत्रयी की दार्शनिक व्याख्या किया है, जबकि अन्य आचार्यों ने विशुद्धतः धर्ममूलक व्याख्यान। वास्तव में वेदान्त की विचारधारा नदी की धारा के समान एक ही स्रोत से निकलकर विस्तीर्ण होकर अनेक शाखाओं में प्रवाहित होती गयी। विशिष्टाद्वैत यूरोपीय दार्शनिक स्पिनोजा के मत से बहुत कुछ मिलता जुलता है। शंकर के अद्वैतवाद के अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म से अभिन्न है यद्यपि वेदान्त के सभी सम्प्रदाय यह दावा करते हैं कि उन्हीं का दृष्टिकोण ही उपनिषदों का वास्तविक दर्शन है तथापि शंकराचार्य का अद्वैतवाद ही उपनिषदों का यथार्थ प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार दर्शन अन्तिम सत्य के उद्घाटन का प्रयास करता है पर इस अन्तिम सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध में सभी दार्शनिक एक मत नहीं है। किसी दार्शनिक ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की है, किसी ने द्वैतवाद और किसी ने अनेकवाद की। द्वैतवाद गुण के आधार पर प्रकृति और पुरुष, जड़ और चेतन दो सत्तायें स्वीकार करता है। स्वरूप की दृष्टि से परमात्मा एक और जीवात्मा अनेक है। अनेकवाद सत्, चित् और आनन्द तीन सत्ताओं का प्रतिपादन करता है। सत् प्रकृति है जिसमें सत्, रज और तम की साम्यावस्था है। इस साम्यावस्था में वैषम्य अथवा विकृति परमात्मा के कारण उत्पन्न होती है, चित्–जीव है जो अनेक है, सच्चिदानन्द परमतत्त्व है। मत वैभिन्न होते हुए भी समस्त दार्शनिकों की प्रकृति एक ऐसी वास्तविकता की ओर गई जो आध्यात्मिक है जो किस भी अस्तित्व की ओर संकेत कर सकता है क्योंकि वह समस्त अस्तित्वों का मूलाधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद– सायणाचार्य भाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1972
2. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. वृहदारण्यकोपनिषद्– शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, 2050
4. ईशावास्योपनिषद्– शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, 2050

5. कठोपनिषद्– शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, 2050
6. तैत्तिरीयोपनिषद्– शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत्, 2050
7. वैदिक युग– सत्यकेतु विद्यालंकार, 7 संस्करण, जनवरी–2001
8. वैदिक दर्शन– पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
9. धर्मदर्शन का आलोचनात्मक इतिहास– डॉ0 शिव भानु सिंह
10. भक्ति का स्वरूप– डॉ0 मुंशीराम शर्मा
11. तर्कसंग्रह– अन्नंभट्ट, सम्पा0– शेषराज शर्मा रेग्मी, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, नवम् संस्करण, 1990
12. तर्कभाषा– केशवमिश्र, तर्कभाषा दीपिका–आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, संवत्, 2020
13. वेदान्तसार– सदानन्द योगीन्द्र, तत्त्वपरिजात टीका डॉ0 सन्तनारायण श्रीवास्तव, पीयूष प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993,
14. भारतीय दर्शन– आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा प्रकाशन, दिल्ली।
15. पाश्चात्य दर्शन– डॉ0 वी0एन0 सिंह